गीत भी, अगीत भी

नीरज

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

श्री श्रेयांस प्रसाद जी

को

जिनसे मुझे सदा ही
सच्चे मित्र का स्नेह और बड़े भाई का प्यार
मिलता रहा है

कलम तोड़ते बचपन बीता,
पाती लिखते गई जवानी;
लेकिन पूरी हुई न अब तक,
दो आखर की प्रेम कहानी!

अनुक्रमणिका

गीत भी, अगीत भी

गीत

विश्व चाहे या न चाहे,
लोग समझें या न समझें,
आ गए हैं हम यहाँ तो गीत गाकर ही उठेंगे।

हर नज़र गमगीन है, हर होठ ने धूनी रमाई,
हर गली वीरान जैसे हो कि बेवा की कलाई,
खुदकुशी कर मर रही है रोशनी तब आँगनों में
कर रहा है आदमी जब चाद तारों पर चढ़ाई,
फिर दियों का दम न टूटे,
फिर किरन को तम न लूटे,
हम जले हैं तो धरा को जगमगा कर ही उठेंगे।
विश्व चाहे या न चाहे

हम नहीं उनमें हवा के साथ जिनका साज़ बदले,
साज़ ही केवल नहीं अदाज़ औ' आवाज बदले
उन फकीरों-सिरफिरों के हमसफर हम, हमउमर हम,
जो बदल जाएँ अगर तो तख्त बदले ताज बदले,

तुम सभी कुछ काम कर लो,
हर तरह बदनाम कर लो,
हम कहानी प्यार की पूरी सुनाकर ही उठेंगे।
विश्व चाहे या न चाहे

नाम जिसका आक गोरी हो गई मैली सियाही,
दे रहा है चाँद जिसके रूप की रोकर गवाही,
थाम जिसका हाथ चलना सीखती आँधी धरा पर
है खड़ा इतिहास जिसके द्वार पर बनकर सिपाही,
आदमी वह फिर न टूटे,
वक्त फिर उसको न लूटे,
जिन्दगी की हम नई सूरत बनाकर ही उठेंगे।
विश्व चाहे या न चाहे

हम न अपने-आप ही आए दुखो के इस नगर मे,
था मिला तेरा निमन्त्रण ही हमे आधे सफर मे,
किन्तु फिर भी लौट जाते हम बिना गाए यहाँ से,
जो सभी को तू बराबर तोलता अपनी नजर मे,
अब भले कुछ भी कहे तू,
खुश कि या नाखुश रहे तू,
गाँव-भर को हम सही हालत बताकर ही उठेंगे।
विश्व चाहे या न चाहे

इस सभा की साज़िशों से तंग आकर, चोट खाकर
गीत गाए ही बिना जो हैं गए वापिस मुसाफ़िर
और वे जो हाथ में मिजराब पहने मुशकिलों की
दे रहे हैं ज़िन्दगी के साज़ को सबसे नया स्वर,
मौर तुम लाओ न लाओ,
नेग तुम पाओ न पाओ,
हम उन्हें इस दौर का दूल्हा बनाकर ही उठेंगे।
विश्व चाहे या न चाहे

सारा जग बंजारा होता

प्यार अगर थामता न पथ में उँगली इस बीमार उमर की
हर पीड़ा वेश्या बन जाती हर आँसू आवारा होता।
निरवंशी रहता उजियाला
गोद न भरती किसी किरन की,
और जिन्दगी लगती जैसे–
डोली कोई बिना दुल्हन की,
दुख से सब बस्ती कराहती, लपटों में हर फूल झुलसता
करुणा ने जाकर नफरत का आँगन गर न बुहारा होता।
प्यार अगर

मन तो मौसम सा चंचल है
सबका होकर भी न किसी का
अभी सुबह का, अभी शाम का
अभी रुदन का, अभी हँसी का
और इसी भौंरे की गलती क्षमा न यदि ममता कर देती
ईश्वर तक अपराधी होता पूरा खेल दुबारा होता।
प्यार अगर

जीवन क्या है एक बात जो
इतनी सिर्फ समझ मे आए–
कहे इसे वह भी पछताए
सुने इसे वह भी पछताए
मगर यही अनबूझ पहेली शिशु सी सरल सहज बन जाती
अगर तर्क को छोड भावना के सँग किया गुजारा होता।
प्यार अगर

मेघदूत रचती न जिन्दगी
वनवासिन होती हर सीता
सुन्दरता कंकडी आँख की
और व्यथ लगती सब गीता
पण्डित की आज्ञा ठुकराकर, सकल स्वर्ग पर धूल उडाकर
अगर आदमी ने न भोग का पूजन-पात्र जुठारा होता।
प्यार अगर

जाने कैसा अजब शहर यह
कैसा अजब मुसाफिरखाना
भीतर से लगता पहचाना
बाहर से दिखता अनजाना
जब भी यहाँ ठहरने आता, एक प्रश्न उठता है मन मे
कैसा होता विश्व कही यदि कोई नही किनारा होता।
प्यार अगर

हर घर आँगन रंगमंच है
औ' हर एक साँस कठपुतली,
प्यार सिर्फ वह डोर कि जिसपर
नाचे बादल, नाचे बिजली,
तुम चाहे विश्वास न लाओ, लेकिन मैं तो यही कहूँगा
प्यार न होता धरती पर तो सारा जग बंजारा होता ।
प्यार अगर

मै पीडा का राजकुँवर हूँ

मैं पीडा का राजकुँवर हूँ, तुम शहजादी रूपनगर की
हो भी गया प्यार हम मे तो बोलो मिलन कहाँ पर होगा?

मीलो जहाँ न पता खुशी का
मैं उस आगन का इकलौता,
तुम उस घर की कली जहा नित
होठ करे गीतो का न्योता,

मेरी उमर अमावस काली और तुम्हारी पूनम गोरी
मिल भी गई राशि अपनी तो बोलो लगन कहाँ पर होगा?
मैं पीडा का

मेरा कुर्ता सिला दुखो ने
बदनामी ने काज निकाले
तुम जो आँचल ओढे उसमे
नभ ने सब तारे जड डाले

मैं केवल पानी ही पानी तुम केवल मदिरा ही मदिरा
मिट भी गया भेद तन का तो मन का हवन कहा पर होगा?
मैं पीडा का

मैं जन्मा इसलिए कि थोड़ी
उम्र ग्रासुग्रो की उढ जाए
तुम ग्राईं इस हेतु कि मेंहदी
रोज़ नये कगार जड़वाए,
तुम उदयाचल, मैं ग्रस्ताचल, तुम सुखान्त की, मैं दुखान्त की
जुड भी गए ग्रक ग्रपने तो रस-ग्रवतरण कहाँ पर होगा ?
मैं पीडा का

इतना दानी नही समय जो
हर गमले मे फूल खिला दे,
इतनी भावुक नहीं ज़िन्दगी
हर खत का उत्तर भिजवा दे,
मिलना ग्रपना सरल नहीं है फिर भी यह सोचा करता हूँ
जब न ग्रादमी प्यार करेगा जाने भुवन कहा पर होगा ?
मैं पीडा का

सारा जग मधुबन लगता है

दो गुलाब के फूल छू गए जब से होठ अपावन मेरे
ऐसी गध बसी है मन मे सारा जग मधुबन लगता है।

रोम-रोम मे खिले चमेली
साँस-साँस मे महँके बेला,
पोर-पोर स भरे मालती
अँग-अँग जुडे जुही का मेला

पग पग लहरे मानसरोवर, डगर-डगर छाया कदब की
तुम जब से मिल गए उमर का खँडहर राजभवन लगता है।
दो गुलाब के फूल

छिन छिन ऐसी लगे कि कोई
बिना रग के खेले होली,
यूँ मदमाए प्राण कि जसे
नई बहू की चदन डोली

जेठ लगे सावन मनभावन और दुपहरी साँझ बसती
ऐसा मौसम फिरा धूल का ढेला एक रतन लगता है।
दो गुलाब के फूल

जाने क्या हो गया कि हरदम
बिना दिये के रहे उजाला,
चमके टाट बिछावन जैसे
तारो वाला नील दुशाला
हस्तामलक हुए सुख सारे दुख के ऐसे ढहे कगारे
व्यग्य-बचन लगता था जो कल वह अब अभिनन्दन लगता है।
दो गुलाब के फूल

तुम्हे चूमने का गुनाह कर
ऐसा पुण्य कर गई माटी
जनम-जनम के लिए हरी
हो गई प्राण की बजर घाटी
पाप-पुण्य की बात न छेडो स्वर्ग-नक की करो न चर्चा
याद किसी की मन मे हो तो मगहर वृन्दावन लगता है।
दो गुलाब के फूल

तुम्हे देख क्या लिया कि कोई
सूरत दिखती नही पराई
तुमने क्या छू दिया, बन गई
महाकाव्य गीली चौपाई
कौन करे अब मठ मे पूजा, कौन फिराए हाथ सुमरिनी
जीना हमे भजन लगता है, मरना हमे हवन लगता है।
दो गुलाब के फूल

उनकी याद हमे आती है

मधुपुर के घनश्याम अगर कुछ पूछे हाल दुखी गोकुल का,
उनसे कहना पथिक कि अब तक उनकी याद हमे आती है।
बालापन की प्रीति भुलाकर
वे तो हुए महल के वासी,
जपते उनका नाम यहाँ हम
यौवन मे बनकर सन्यासी,
सावन बिना मल्हार बीतता, फागुन बिना फाग कट जाता,
जो भी रितु आती है बृज मे वह बस आसू हो जाती है।
मधुपुर के घनश्याम ·

बिना दिये की दीवट जैसा
सूना लगे उमर का मेला,
सुलगे जैसे गीली लकडी
सुलगे प्राण साँझ की बेला,
धूप न भाए, छाँह न भाए, हँसी-खुशी कुछ नही सुहाए,
अर्थी जैसे गुजरे पथ से ऐसे आयु कटी जाती है।
मधुपुर के घनश्याम

पछुआ वन लौटी पुरवाई,
टिहू-टिहू कर उठी टिटहरी,
पर न मिराई तनिक हमारे
जीवन की जलती दोपहरी,
घर बैठूं तो चैन न आए, बाहर जाऊं भीड़ सताए,
इतना रोग बढ़ा है ऊधो! कोई दवा न लग पाती है।
मधुपुर के घनश्याम

लुट जाए बारात कि जैसे
लुटी लुटी है हर अभिलाषा,
थका-थका तन, बुझा बुझा मन,
मरुथल बीच पथिक ज्यों प्यासा,
दिन कटता दुर्गम पहाड़ सा, जनम कैद सी रात गुज़रती,
जीवन वहाँ रुका है आते जहाँ ख़ुशी हर शरमाती है।
मधुपुर के घनश्याम

कलम तोड़ते बचपन बीता,
पाती लिखते गई जवानी,
लेकिन पूरी हुई न अब तक,
दो आखर की प्रेम कहानी,
और न बिसराओ–तरसाओ, जो भी हो उत्तर भिजवाओ,
स्याही की हर बूंद कि अब शोणित की बूंद बनी जाती है।
मधुपुर के घनश्याम

खिड़की बन्द कर दो

अब सही जाती नही यह निर्दयी बरसात—
खिडकी बन्द कर दो !

यह खडी बौछार, यह ठडी हवाओ के झकोरे,
बादलो के हाथ मे यह बिजलियो के हाथ गोरे
कह न दें फिर प्राण से कोई पुरानी बात—
खिडकी बन्द कर दो !

वह अकेलापन कि अपनी साँस लगती फाँस जैसी,
कापती पीली शिखा दिखती दिये की लाश जैसी,
जान पडता है न होगा इस निशा का प्रात—
खिडकी बन्द कर दो !

था यही वह वक्त मेरे वक्ष मे जब शिर छिपाकर,
था कहा तुमने तुम्हारी प्रीति है मेरी महावर,
बन गई कालिख तुम्हें पर अब वही सौगात—
खिडकी बन्द कर दो !

अब न तुम वह, अब न मैं वह, वे न मन मे कामनाएँ,
सिफ क धा पर धरी कुछ अर्थियाँ, कुछ यातनाएँ,
किसलिए चाहूँ चढे फिर उम्र की बारात—
खिडकी ब द. कर दो !

रो न मेरे मन, न गीला आँसुओ से क र बिछौना,
हाथ मत फैला पकडने को लडकपन का खिलौना,
मेह-पानी मे निभाता कौन किसका साथ—
खिडकी ब द कर दो !

अब सहा जाता नहीं

अब तुम्हारे बिन नही लगता कही भी मन—
बताओ क्या करूँ ?
नीद तक से हो गई है आजकल अनबन—
बताओ क्या करूँ ?

धूप भाती है न भाती छाँव है,
गेह तक लगता पराया गाँव है,
और इसपर रात आती है बहुत बनठन—
बताओ क्या करूँ ?

चैन है दिन मे न कल है रात मे,
क्योकि चिड-चिडकर ज़रा सी बात मे,
हर खुशी करने लगी है दिन ब दिन अनशन—
बताओ क्या करूँ ?

पर्व हो या तीज या त्योहार हो,
हो शरद, हेमन्त या पतझार हो,

हो गई हैं सब धुनें इकबारगी बेधुन—
बताओ क्या करूँ ?

तन मचलता है लजीली बाँह को,
मन तड़पता है अलक की छाँह को,
लौटकर फिर आ गया है प्रीति का बचपन,—
बताओ क्या करूँ ?

वक्ष जिसपर शिर तुम्हारा था टिका,
होठ जिनपर गीत तुमने था लिखा,
हैं सुलगते आज यूँ छिन-छिन कि ज्यों ईंधन—
बताओ क्या करूँ ?

यह उदासी, यह अकेलापन सघन,
यह जलन यह दाह यह उमड़न, घुटन,
अब सहा जाता नहीं यह साँस का ठनगन—
बताओ क्या करूँ ?

तुम ही नहीं मिले जीवन में

पीडा मिली जनम के द्वारे, अपयश पाया नदी किनारे
इतना कुछ मिल गया एक बस तुम ही नही मिले जीवन मे।
हुई दोस्ती ऐसी दुख से
हर मुश्किल बन गई रुबाई,
इतना प्यार जलन कर बैठी
क्वाँरी ही मर गई जुन्हाई,
बगिया मे न पपीहा बोला, द्वार न कोई उतरा डोला,
सारा दिन कट गया बीनते काँटे उलझे हुए बसन मे।
पीडा मिली जनम के द्वारे

कहीं चुरा ले चोर न कोई
दर्द तुम्हारा, याद तुम्हारी,
इसीलिए जगकर जीवन-भर
आँसू ने की पहरेदारी,
बरखा गई सुने बिन वशी औ' मधुमास रहा निरवशी,
गुजर गई हर रितु ज्यो कोई भिक्षुक दम तोड दे विजन मे।
पीडा मिली जनम के द्वारे

घट भरने को छलके पनघट
सेज सजाने दौड़ी कलियाँ,
पर तेरी तलाश में पीछे
छूट गईं सब रस की गलियाँ,
सपने खेल न पाए होली, अरमानों के लगी न रोला,
बचपन झुलस गया पतझर में, यौवन भीग गया सावन में।
पीड़ा मिली जनम के द्वारे

मिट्टी तक तो रूँदकर जग में
कंकड से बन गई खिलौना,
पर हर चोट ब्याह करके भी
मेरा सूना रहा बिछौना,
नहीं कहीं से पाती आई, नहीं कहीं से मिली बधाई
सूनी ही रह गई डाल इस इतने फूलों-भरे चमन में।
पीड़ा मिली जनम के द्वारे

तुम ही हो वह जिसकी खातिर
निशि-दिन घूम रही यह तकली,
तुम ही यदि न मिले तो है सब
व्यर्थ कताई असली नकली,
अब तो और न देर लगाओ, चाहे किसी रूप में आओ,
एक सूत भर की दूरी है बस दामन में और कफन में।
पीड़ा मिली जनम के द्वारे

बिन धागे की सुई ज़िन्दगी

मेरा जीवन बिखर गया है, तुम चुन लो कंचन बन जाऊँ।
तुम पारस, मैं अयस अपावन,
तुम अमरित, मैं विष की बेली,
तृप्ति तुम्हारी चरणन चेरी,
तृष्णा मेरी निपट सहेली,
तन मन भूखा, जीवन भूखा,
सारा खेत पड़ा है सूखा,
तुम बरसो घनश्याम तनिक तो
मैं अषाढ़ सावन बन जाऊँ।
मेरा जीवन बिखर गया है

यश की बनी अनुचरी प्रतिभा,
बिकी अर्थ के हाथ भावना,
काम-क्रोध का द्वारपाल मन,
लालच के घर रहन कामना,
अपना ज्ञान न जग का परिचय,
बिना मंच का सारा अभिनय,

सूत्रधार तुम बनो अगर तो
मैं अदृश्य दर्शन बन जाऊँ।
मेरा जीवन बिखर गया है

बिन धागे की सुई जिन्दगी
सियें न कुछ, बस चुभ-चुभ जाए,
कटी पतंग-समान सृष्टि यह
ललचाए पर हाथ न आए
रीती झोली, जर्जर कथा,
अटपट मौसम, दुस्तर पथा,
तुम यदि साथ रहो तो फिर मैं
मुक्तक रामायण बन जाऊँ।
मेरा जीवन बिखर गया है

बुदबुद तक मिटकर हिलोर इक
उठा गया सागर अकूल मे,
पर मैं ऐसा मिटा कि अब तक
फूल न बना, न मिला धूल मे,
कब तक और सहूँ यह पीडा,
अब तो खत्म करो प्रभु ! क्रीडा,
इतनी दो न थकान कि जब तुम
आओ, मैं दृग खोल न पाऊँ।
मेरा जीवन बिखर गया है

जीवन नहीं मरा करता है

छिप छिप अश्रु बहाने वालो !
मोती व्यर्थ लुटाने वालो !
कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।

सपना क्या है ? नयन-सेज पर
सोया हुआ आख का पानी,
और टूटना है उसका ज्यों
जागे कच्ची नींद जवानी,

गीली उमर बनाने वालो !
डूबे बिना नहाने वालो !
कुछ पानी के बह जाने से सावन नहीं मरा करता है।

माला बिखर गई तो क्या है
खुद ही हल हो गई समस्या,
आँसू गर नीलाम हुए तो
समझो पूरी हुई समस्या,

रूठे दिवस मनाने वालो !
फटी कमीज सिलाने वालो !
कुछ दीपों के बुझ जाने से आँगन नहीं मरा करता है।

खोता कुछ भी नहीं यहाँ पर
केवल जिल्द बदलती पोथी,
जैसे रात उतार चादनी
पहने सुबह धूप की धोती,
वस्त्र बदल कर आने वालो !
चाल बदल कर जाने वालो !
चन्द खिलौनो के खोने से बचपन नही मरा करता है।

कितनी बार गगरियाँ फूटी
शिकन न पर आई पनघट पर,
कितनी बार किश्तियाँ डूबी
चहल-पहल वो ही है तट पर,
तम की उमर बढाने वालो !
लौ की आयु घटाने वालो !
लाख करे पतझर कोशिश पर उपवन नही मरा करता है।

लूट लिया माली ने उपवन
लुटी न लेकिन गन्ध फूल की,
तूफानो तक ने छेडा पर
खिडकी बन्द न हुई धूल की,
नफरत गले लगाने वालो !
सब पर धूल उडाने वालो !
कुछ मुखडो की नाराज़ी से दर्पन नही मरा करता है।

सारा बाग नज़र आता है

मैंने तो सोचा था तेरी छाया तक से दूर रहूँगा,
चला मगर तो जाना हर पथ तेरे ही घर को जाता है।

इतने बदले पथ कि जीवन
ही बन गया एक चौरस्ता,
सूखा पर न कभी जो भेंटा
तूने सुधियो का गुलदस्ता,
जाने यह कौन सा दर्द है, जाने यह कौन सा कर्ज है,
जिसे चुकाने हर सौदागर कपडे बदल-बदल आता है।

तुझसे छिपने की कोशिश मे
ओढ गुनाह लिया हर कोई,
याद न आती रात मगर जब
आँख न छिप-छिप कर हो रोई
कैसे तुझसे रिश्ता टूटे, कसे तुझसे नाता छूटे,
मरघट के रस्ते मे भी तो तेरा पनघट मुस्काता है।

कोई सुमन न देखा जिसमें
बसी न तेरी गंध श्वास हो,
कोई आँसू मिला न जिसको
तेरे अंचल की तलाश हो,
चाहे हो वह किसी रंक को, चाहे हो वह किसी राव की,
तू ही तो बनकर कहार हर डोली नैहर से लाता है।

जब तक तेरा दर्द नहीं था
श्वास अनाथ, उमर थी क्वाँरी
खुशियाँ तो हैं दूर, न दुख
तक से थी कोई रिश्तेदारी,
लेकिन तेरा प्यार हृदय को जगा गया, उस दिन से मुझको,
छोटी से छोटी पत्ती में सारा बाग नज़र आता है।

रीती गागर का क्या होगा

माखन चोरी कर तूने कम तो कर दिया बोझ ग्वालिन का,
लेकिन मेरे श्याम बता अब रीती गागर का क्या होगा ?

युग-युग चली उमर की मथनी
तब झलकी दधि में चिकनाई,
पिरा पिरा हर साँस उठी जब
तब जाकर मटकी भर पाई,
एक कंकड़ी तेरे कर की
किन्तु न जाने आ किस दिशि से
पलक मारते लूट ले गई
जनम-जनम की सकल कमाई,
पर है कुछ न शिकायत तुझसे, केवल इतना ही बतला दे,
मोती सब चुग गया हंस तब मानसरोवर का क्या होगा ?
माखन चोरी कर तूने

सजने को तो सज जाती है
मिट्टी यह हर एक रतन से,

शोभा होती किन्तु और ही
मटकी की टटके माखन से,
इस द्वारे से उस द्वारे तक
इस पनघट से उस पनघट तक
रीता घट है बोझ धरा पर
निर्मित हो चाहे कचन से,
फिर भी कुछ न मुझे दुख अपना, चिन्ता यदि कुछ है, तो यह है
वशी धुनी बजाएगा जो उस वशीधर का क्या होगा ?
माखन-चोरी कर तूने

दुनिया रस की हाट, सभी को
खोज यहाँ रस की क्षण-क्षण है,
रस का ही तो भोग जनम है,
रस का ही तो त्याग मरण है,
और सकल धन धूल, सत्य
तो धन है बस नवनीत हृदय का,
वही नही यदि पास, बड़े से
बडा धनी फिर तो निधन है,
अब न नचेगी यह गूजरिया, ले जा अपनी कुर्ती फरिया,
रितु ही जब रसहीन हुई तो पचरँग चूनर का क्या होगा ?
माखन-चोरी कर तूने

देख समय हो गया पैंठ का,
पथ पर निकल पडी हर मटकी,

केवल मैं ही निज देहरी पर
सहमी-सकुची, भटकी-भटकी,
पास नहीं जब गो-रस कुछ भी
कैसे तेरे गोकुल आऊँ ?
कैसे इतनी ग्वालिनियो मे
लाज बचाऊँ अपने घट की,
या तो इसको फिर से भर दे, या इसके सौ टुकड़े कर दे
निर्गुन जब हो गया सगुन, तब इस आडम्बर का क्या होगा ?
माखन चोरी कर तूने

जब तक थी भरपूर मटकिया,
सौ सौ चोर खड़े थे द्वारे,
अनगिन चिन्ताएँ थी मन मे
गेह जड़े थे लाख किवाड़े,
किन्तु कट गई अब हर सॉकल,
और हो गई हल हर मुश्किल,
अब परवाह नही इतनी भी
नाव लगे किस नदी-किनारे,
सुख-दुख हुए समान सभी पर फिर भी एक प्रश्न बाकी है
वीतराग हो गया मनुज तो, बूढे ईश्वर का क्या होगा ?
माखन चोरी कर तूने

माँ! जल भरन न जाऊँ

माँ ! जल भरन न जाऊँ, बाहर छेड़े एक पड़ोसी छोरा !
भीतर से तो काजर-कोठा, बाहर दीखे गोरा-गोरा—
माँ ! जल भरन न जाऊँ !

जिधर बढ़ाऊँ चरण, उधर ही
साथ लगा छाया सा डोले,
भीड़ देख जा छिपे ग्राड मे,
इकला पाते ही सँग हो ले,
तरह-तरह के रूपक रचकर
ऐसा नाच नचाए मन को,
बिना सूत्र के पुतली नाचै,
बिना तार इकतारा बोले,
घट से तट तक, थल से जल तक,
पण कुटी से राजमहल तक,
कोई भी पथ नही जहाँ यह हेरा-फेरी करे न भौंरा !
माँ ! जल भरन न जाऊँ !

झुककर करे प्रणाम कभी औ'
कभी खडा हो तनकर आगे,
लिख-लिख फेंके पत्र राह मे,
कभी झटककर अचल भागे,

कभी कहे तू चन्द्र किशोरी,
कभी कहे तू कली कमल की,
बिंध बिंध जाए मन पहाड का
ऐसे बुने वचन के धागे ।

बोल कि जैसे बेला गमके,
वस्त्र कि जैसे दपन दमके,

देखा सुना न पहले मैया । ऐसा झूठा शेखीखोरा ।
मॉं । जल भरन न जाऊॅं ।

जाने किस कुल का यह बेटा,
कौन न जाने इसकी माता,
इसी मुहल्ले बसे कही पर
पता नही घर का चल पाता,

जब देखो तब किसी मोड पर
लुका छुपी करता फिरता है,
डॉंटा कितनी बार मगर मॉं ।
शैतानी से बाज न आता,
कोशिश कर-कर हूॅं थक जाती,
पर पनघट तक पहुॅंच न पाती,

अब तू ही वह राह बता जिस राह न रीता रहे सकोरा ।
मॉं ! जल भरन न जाऊॅं ।

माँ! मत ऐसे टेर

मा! मत ऐसे टेर कि मेरा तन अकुलाए, मन अकुलाए!

तू तो दे आवाज वहाँ पर
यहाँ न मुझसे बजे बासुरी,
तू खीझे उस ठौर, चिढाए
यहाँ मुझे हर फूल-पाँखुरी,

तेरी ममता उधर न माने,
रार इधर सँग टोली ठाने,
दो टेरो के बीच, बडे
दुख मे है मिट्टी की बिरादरी,

तेरी करूँ न तो तू बिगडे,
जग की सुनू न तो वह झगडे,
समझ नहीं आता नैया इस तट जाए, या उस तट जाए।
माँ! मत ऐसे टेर!

अभी न दिन भी ढला, न कोई
चिडिया लेने गई बसेरा,

खड़ा सड़क के बीच पतंगे
लूट रहा है समय लुटेरा,

अभी दूर है शाम, न लौटी
वन से अपनी कोई गैया,
फिर क्यों बार-बार मुझको ही
आने लगा बुलावा तेरा

पर मैया कैसे मैं आऊँ ?
कैसे उन सबको बिसराऊँ ?

मेरे बिना कि जिनके गेह, न बेला खिला, न बादल छाए।
मा ! मत ऐसे टेर !

इधर पड़ी इकलौती गुड़िया,
उधर खड़ा बातून खिलौना,
पाँव - तले अधबना घरौंदा,
हाथ उमर का खाली दौना,

चकई हेरे, घेरे भौंरा,
टेरे झूला, बिलखे डोरी,
फिर तू ही कह आकर तेरी
गोद करूँ किस तरह बिछौना,

सब का सब निर्माण अधूरा,
कोई भी तो खेल न पूरा,
कैसे हो निस्तार गली से बच आऊँ तो गाँव बुलाए !
माँ ! मत ऐसे टेर !

सग खेलने निकले थे जो
साथी इस सागर के तट पर,
वे सब अब तक ढूंढ रहे हैं
मोती जल मे डूब डूबकर,

कोई झोली रही न खाली,
कुछ मे शख, कुछो मे सीपी,
केवल मैं ही एक न जिसकी
अजलि मे नीर भी बूद भर,

निधनता कुछ हर लेने दे,
मोती अँजुरी भर लेने दे,
क्या है ठीक कि कल फिर तू यह खेल खिलाए, या न खिलाए!
माँ! मत ऐसे टेर!

मैं ही नही और भी तो हैं
बेटे तेरे धूल लपेटे,
फिर क्यो घूम-घूमकर तेरी
ममता मुझसे ही आ भेंटे,

मैं राजा बन जाऊँ, वे सब
रक रहे यह ठीक नहीं है
जब हम सबने साथ-साथ
बाँधे हैं कमर उमर के फेंटे,

जो कुछ देना है, सबको दे,
जो कुछ लेना है, सबसे ले,
पाने हुए प्रसाद अकेले भक्ति लजाए, ज्ञान लजाए!
माँ! मत ऐसे टेर!

माँ! अब गोद सुला ले

माँ ! अब गोद सुला ले, तेरी लोरी फिर सुनने का मन है !

धूप ढली, घिर आई संध्या,
उडी बाग की सकल चिरैयाँ,
छोड-छोड अधबने घिरौंदे,
लौट गए सब गुड्डे-गुडियाँ,

जितने थे साथी उन सबकी
मौसम के सँग आँखें बदली,
अब केवल मैं शेष, और हैं
शेष राह की भूल-भुलैयाँ,

पूरब सूना, पच्छिम सूना,
उत्तर सूना, दक्खिन सूना,
दृष्टि जहाँ तक जाती केवल सूनापन ही सूनापन है।
माँ ! अब गोद सुला ले !

धनी उठाए महल–दुमहले
निधन की छत नील छपरिया,

फूलन ऊपर छाँह शूल की
माटी के सिर घिरी बदरिया,

जितनी कठपुतलियाँ यहाँ पर
उतने नाटक, उतने परदे,
पर तेरे मृगछौने तुझको
छोड गहे किसकी चादरिया,

नभ दुत्कारे, भू दुत्कारे,
ग्राम-नगर हर पत्थर मारे,
जाने कैसा क्षण आया जो दुश्मन सारा हुआ भुवन है।
मा! अब गोद सुला ले!

अनगिन राग सुने रस-भीने
अनगिन तरह बजी शहनाई,
अनगिन वार बिछौना बदला,
अनगिन आँगन रात गँवाई,

हर दुख-दर्द बनाया तकिया,
शाल समझ ओढी बदनामी,
तेरी लोरी सुने बिना पर
जनम-जनम-भर नीद न आई,

घुने घिसे सब पाटी-पाये,
जर्जर हुई मसहरी सारी,
अब तो तेरी गोद छोडकर और न कोई कही शरण है।
माँ! अब गोद सुला ले!

आह ! समय हो गया शयन का
बन्द हुई साँकल हर घर की,
केवल मैं ही खड़ा लगाए
हुए नुमायश थकी उमर की,

जितने सौदागर आए वे
बढ़ा दुकानें कब के लौटे
तुझे हिसाब दिए बिन पर मैं
कैसे गठरी छुऊँ सफर की,

किन्तु न अब है जागा जाता
काँप रही लौ दिया धुँआता,
जल्दी आँचल बढ़ा, नही तो तम से होता गठबन्धन है।
माँ ! अब गोद सुला ले !

मर्म न जिसका गीता जाने
वेद न कर पाए परिभाषा,
अर्थ खोजते तर्क छिपे सब
ज्यो पानी के बीच बताशा,

आ हर सुबह उचारे जिसको
जा हर शाम पुकारे जिसको
और न कुछ वह एक शब्द 'माँ'
का है यह सब खेल-तमाशा,

चाहे जितना बड़ा धनी हो,
चाहे जितना बड़ा गुनी हो,
जिसके पास न माँ का मन है, वह सबसे ज्यादा निधन है।
माँ ! अब गोद सुला ले !

माँ ! मत हो नाराज़

माँ ! मत हो नाराज कि मैंने खुद ही मैली की न चुनरिया !

मैं तो हूँ पिंजरे की मैना,
क्या जानूँ गलियाँ-गलियारे,
तू ही बोली सुबह कि जाऊँ
देखू मेला नदी किनारे,

मैं तो अपनी बिलकुल मोटी-
झोटी धोती मे ही खुश थी
तूने ऐसी रँगी ओढनी
जिसे सभीकी आँख निहारे,

फिर किस तरह दोष है मेरा,
फिर क्यो मुझपर गुस्सा तेरा,
पिंजरे का जब द्वार खुला तो भीतर कैसे बैठे चिडिया।
माँ ! मत हो नाराज़।

मैला भी मेला कैसा ? पग-
पग पर जहाँ बिछा आकर्षण,

लाख दुकानें, लाख तमाशे,
लाख नटनटी, लाख प्रदर्शन,

और फूल भी नकली ऐसे
असली देख जिन्हे शरमाएँ
फिर तू ही बतला अपना मन
कैसे बस मे रखे लडकपन ?

फिर भी मैंने बहुत कसा मन,
चचल दृग पर किया नियत्रण,
रँगा खिलौना देख एक पर खुल ही मन की गई किवरिया।
माँ ! मत हो नाराज !

बहक गए जब नयन, दीन औ'
दुनिया की ऐसी सुध बिसरी,
चुनरी की क्या कहूँ ? याद तक
रही न सिर पर रक्खी गठरी,

हृदय डूबता गया और मैं
खडी डूबती रही धूल मे
जल मे ज्यो घुल जाए चदन,
माखन मे मिल जाए मिसरी,

मिट्टी से सबध हुआ जब
मेलो से अनुराग बढा जब,
तब कैसे सभव बिलकुल बेदाग बनी रह जाय चुनरिया।
मा ! मत हो नाराज !

मथुरा से काशी तक भटकी,
मलमल से बल्कल तक धाई,
पर बिलकुल बेदाग कहीं भी
चादर कोई नज़र न आई,

परखे संत महंत हज़ारों
जांचे कलाकार कवि लाखों
लेकिन सबकी गोराई के
नीचे छिपी मिली कजलाई,

ज्ञानी जहाँ ज्ञान सँग डूबे
ध्यानी जहाँ ध्यान सँग डूबे
उस तट से बिन भीगे घट भर ले कैसे नादान उमरिया।
माँ! मत हो नाराज़!

चूक हुई सचमुच माँ! लेकिन
मुझसे ज्यादा दोष उमर का
जिसने बिना बताए ही
दरवाज़ा खोल दिया भीतर का,

तेरी भी यह भूल कि मुझको
भेज दिया उस गाँव अकेले
भरी सभा के बीच जहाँ
जादू चलता है झुकी नज़र का,

जो कुछ हुआ उसे बिसरा दे,
सटी फेंक, बाल सहला दे,
तेरी ममता भी न मिली तो जाने फिर क्या करे गुजरिया?
माँ! मत हो नाराज़!

मात्र परछाईं हूँ

अब मैं तुम्हारे लिए व्यक्ति नहीं
मात्र परछाईं हूँ।
जब तुम्हारे माथे पर रात थी,
पाव तले धरती कठोर,
और सामने असीम घन-अधकार,
तब मैं तुम्हारे लिए दीप था
तुम्हारा क्वाँरी प्रकृति का पुरुष,
और तुम्हारी प्रश्नवती आँखों का उत्तर।
लेकिन अब तुम्हारी आंखों मे
प्रश्न नही—स्वप्न है
पाँवो मे कप नही—गति है
हाथों मे मेरे खत के बजाय
हीरे की अँगूठी है,
सामने सूरज
और पीछे शहनाई है।
अब मैं तुम्हारे लिए व्यक्ति नहीं
मात्र परछाईं हूँ।

खिड़की खुली

खिडकी खुली,
सावन का पहला झोंका आया,
दो-चार बूँदें साथ लाया,
तन सिहरा,
मन बिखरा,
कमरा सुवास में नहा गया,
पर न जाने क्यो—
आँखो मे आँसू एक आ गया।
खिडकी खुली

मोती हूँ मैं

मोतो हूँ मैं,
किसी एक सीपी मे बन्द
अथे समुद्र के गभ मे पडा हूँ,
तल के निकट
मगर तट से दूर।

दिन बीते,
मास बीते,
वप बीते,
मौसम आए गए,
लेकिन मैं वही हूँ
रख गई थी जहाँ मुझे
युगो पहले
नन्ही सी लहर एक आयु की।

असह अब अकेलापन,
खोल का सीमित व्यक्तित्व,

व्यर्थ है दपनिका–कान्ति–
तन का वचक कृतित्व ।

ओ मेरे उद्धारक !
पनडुब्बे-गोताखोर ?
इस जल-समाधि से बाहर निकाल मुझे,
ताकि मैं भी देख सकू—
तट पर यात्रियो के पद्-चिह्न
जहाजो की कतार,
आँधी तूफानो का खेल,
और गुंथकर किसी माला मे–
सुन सकूं—
मृत लहरो की बजाय
हृदय का धडकन सगीत
जीवन की आवाज ।

द्वताद्वैत

हम एक किताब के दो पृष्ठ हैं—
एक मे गुम्फित होकर भी हम दो हैं,
एक सूत्र मे सूत्रित होकर भी हम दो हैं।
यद्यपि मुझपर अकित अतिम वाक्य
तुमपर जाकर पूरा होता है,
और तुमपर अकित पहला वाक्य
मुझसे शुरू होता है,
फिर भी हम दो हैं।
यद्यपि तुम्हारे अर्थ का सदर्भ मैं,
और मेरे अर्थ का सदभ तुम हो,
फिर भी हम दो हैं।
यद्यपि हमारे जिल्दसाज ने मोडकर
हमे दो से एक किया है,
फिर भी हम दो हैं,
क्योकि हम किताब के दो पृष्ठ हैं
और किताब एक पृष्ठ की नही होती।

पायदान

निर्मम पदाघात,
मिट्टी,
धूल,
कीचड़,
सभी कुछ धारण किया वक्ष पर
विना प्रतिवाद,
(ताकि)
स्वच्छ रहे आँगन,
निरोग रहे कक्ष,
जहाँ पल रहे हैं सपने
जिन्हे कहते हैं भविष्य !

फिर भी,
मुझे जगह मिली बाहर
देहरी के पास,
जहाँ शायद ही पहुँचे कभी
घर मे महकती चमेली की सुवास !

हरिण और मृगजल

ओ प्यासे हरिण !
जल की खोज मे तू दौडा,
जीवन की अन्तिम श्वास तक तू दौडा,
रेगिस्तान के इस छोर से उस छोर तक तू दौडा।

और जब आज तू
विवश निरुपाय
दो बूद जल के बिना
इस जलती रेत पर
तोडता है दम जैसे भोर का दियना असहाय–

तब तुझे
यह सत्य जानकर
दुख है, पश्चाताप है
कि जिसकी तलाश मे,
जिसके सम्मोहन मे
तूने यह यात्रा की,

सारी धूप सर से गुजार दो,
वह जल नही—भ्रम था।
रेत के चमकते कणो का
मोहक भुलावा था—
धोखा था, छल था।

लेकिन, ओ हरिण!
प्यास से पीड़ित अतृप्ति के चरण!
खेद मत कर निज पराजय पर,
दोष मत दे उस जलमाया को,
बल्कि आभार मान उस मिथ्या मोहन का
जिसने तुझे प्यास दी, अतृप्ति दी,
तेरे थके चरणो को गति दी,
यात्रा-अनुरक्ति दी।
वह भ्रम न होता तो
तू भी किसी कोने मे पड़ा पड़ा मर जाता,
पतझर के पात-सा अचीन्हा—
अदेखा ही बिखर जाता।

सदा तू छला गया,
वंचित अतृप्त रहा,
इसलिए तो तू
रुकने की एवज मे चला—
लपटो अँगारो से भिड़ा,

बीच ही मे खो गए हज़ारो जहा काफिले
उस असीम काल के मरुस्थल मे
आधी के वेग-सा बढा
और यह जान सका—
मृग-जल जो भ्रम है
वह जीवन है, गति है
जल जो सत्य है
वह अगति है
मरण की स्वीकृति है।

ओ प्यासे हरिण!
प्यास से पीडित अतृप्ति के चरण।

धनी और निर्धन

ढेर था मिट्टी का
रास्ते पर पड़ा हुआ
त्यक्त-अस्पृश्य ।

निकला एक कुंभकार
बोला–
'मैं हूँ भूख से
पीडित अशान्त,
चल मेरे साथ,
तुझे चाक पर चढाऊँगा
और कुछ बना कर तुझे, रोटी कमाऊँगा ।'

ढेर कुछ बोला नही
मौन हो लिया उसके साथ
घर जाकर कुटा-पिटा,
आवे म पका,
और बाजार मे खिलौना बनकर बिका ।

मिटा भी तो
भूखे का भोजन जुटाकर मिटा—
क्योंकि वह डर नहीं, श्रम था।

× × ×

एक था बादल
हज़ारों मन पानी का ढेर साथ लिए हुए
शीतल-पवित्र,
गुज़रा मरुस्थल से।

प्यास से तड़पती हुई मिट्टी ने कहा—
'ओ साँवरे! दो बूंद देता जा
पानी के बिना मैं अपाहिज हूँ, बाँझ हूँ
तेरे आगे आँचल पसारती हूँ
खुद को बिछाकर तेरे पाँवों पर
आरती उतारती हूँ।'

बादल विद्रूप हँसी हँसा
गरजा
और ताना सा मारकर चला गया
जलधारी होकर भी
प्यासे की प्यास और बढ़ा गया—
क्योंकि वह बादल नहीं
पूंजीपति अधम था।

नया हिसाब

एक था मजदूर
जेठ की जलती हुई धूप मे
उसने किया
सात घण्टे काम
नीचे से ऊपर
ढोईं ईंट तमाम
और जब हुई शाम
पाया उसने
रुपया एक
और बीडी पीने को इकन्नी इनाम।
फुटपाथ की लेकर टेक
रात को सोया अधपेट
लडने को फिर सुबह
पूरा जीवन संग्राम !

मैंने बिजली के पखे की हवा मे
गुदगुदे बिस्तर पर लेटकर

सिर्फ आध घण्टे मे
लिखी एक कविता
कविता की भी केवल दस पक्तियाँ
अखबारो मे छपी
सजधज के साथ बिकी
देश मे विदेश मे
यश की मिली फीस
और फिर ऊपर से आए
बतौर पारिश्रमिक पूरे रुपये तीस।

मेरे हर मिनट का मूल्य मिला
तीस बटा तीस
और उसकी मेहनत की दर हुई
एक बटा चार सौ बीस।

अ तर अपार है
समझ नही आता यह
जोड है कि बाकी है
गुणा है कि भाग है
कौन-सा हिसाब है ?
कौन-सी अवस्था है ?——
जजर समाज की जजर व्यवस्था है।

अंजलि

दानी !
तुमने तो बहुत कुछ किया,
विष से लगाकर अमृत तक दिया।
पर मेरा भाग्य—
मेरी अंजुली में सन्धि थी
और मेरी लोभी दृष्टि
तुमने जो दिया,
उसे छोड़,
तुमने जो नहीं दिया-उस पर थी।
इसलिए तुम्हारा दान
अचीन्हा,
अदेखा ही बिखर गया, बह गया
और मैं निधन का निधन ही रह गया।
दानी !
तुमने तो बहुत कुछ किया,
विष से लगाकर अमृत तक दिया।
पर मेरा भाग्य

गीत

साधो ! हम चौसर की गोटी ।
कोई गोरी, कोई काली, कोई बडी, कोई छोटी ।।

इस खाने से उस खाने तक,
चमराने से ठकुराने तक,
खेले काल-खिलाडी, सबकी गहे हाथ मे चोटी ।
साधो ! हम ।।

कोई पिटकर, कोई बसकर,
कोई रोकर, कोई हँसकर,
सब ही खेलें ढोठ खेल यह चाहे मिले न रोटी ।
साधो ! हम ।।

कभी पट्ट हर कौडी आवे,
कभी अचानक पौ पड जावे,
मोर बनाए एक फेंक तो, दूजी हरे लँगोटी ।
साधो ! हम ।।

इक-इक दाँव को इक-इक फदा,
इक-इक घर है गोरख धधा,
हर तकदीर यहाँ है जैसे कूकर के मुँह बोटी।
साधो ! हम ॥

बिछी बिसात जमा जब तक फड,
तब तक ही सारी यह भगदड,
फिर तो एक खलोता सबकी बाँधे गठरी मोटी।
साधो ! हम ॥

गीत

साधो ! जीवन दुख की घाटी ।
दिस दिस फिरे निसक हाथ मे लेकर जेठ लूकाठी ।।

सुलगें सारे पछी पिंजर,
सुलगें कल्प, सदी, मन्वन्तर,
ऐसी आग लगी है भीषण सोना बचे न माटी ।
साधो ! जीवन ।।

ऊँचाई से उच्च उँचाई,
नीचाई से निच्च निचाई,
इस पर धरी हुई हर कांधे सौ सौ मन की काठी ।
साधो ! जीवन ।।

पूरब जाओ, पच्छिम जाओ,
चाहे जहाँ भभूत रमाओ,
एक हाथ हर ठौर पीठ पर पल पल मारे सौंठी ।
साधो ! जीवन ।।

इक-इक दाव क
इक-इक घर
हर तकदीर यहा

बिछी बिसात जमा
तब तक ही सारी यह
फिर तो एक खलीता सब

गीत

साधो ! दुनिया दरसन--मेला ।
इस दिसि फूले कमल-केतकी उस दिसि महके बेला ।

लाखों परदे, लाखो छवियाँ,
एक एक से सुन्दर कृतियाँ,
जिधर बढाओ हाथ उधर ही है मिसरी का ढेला ।
साधो ! दुनिया · ॥

हँसकर देखो, रोकर देखो,
जगकर देखो, सोकर देखो,
अनगिन खेल-तमाशे लेकिन लगे छदाम न धेला ।
साधो ! दुनिया ॥

भी आए सो फँस जाए,
-जनम तक निकल न पाए,
त की पर जुग-जुग ठेलम-ठेला ।
साधो ! दुनिया ॥

राजा, रंक, गृही, सन्यासी,
बड़े-बड़े तलवार–विलासी,
जो भी आए यहाँ गए सब खाली कर-कर माटी।
साधो! जीवन ॥

क्या सोया है ओढ़ गुदड़िया,
साथ सुला माटी की गुड़िया,
दुनिया तो है अरे बावरे बिन पाटी की खाटी।
साधो! जीवन ॥

गीत

साधो ! दुनिया दरसन–मेला ।
इस दिसि फूले कमल-केतकी उस दिसि महके वेला ।

लाखो परदे, लाखो छविया,
एक एक से सुन्दर कृतियाँ,
जिधर बढाओ हाथ उधर ही है मिसरी का ढेला ।
साधो ! दुनिया ॥

हँसकर देखो, रोकर देखो,
जगकर देखो, सोकर देखो,
अनगिन खेल-तमाशे लेकिन लगे छदाम न धेला ।
साधो ! दुनिया ॥

जो भी आए सो फँस जाए,
जनम जनम तक निकल न पाए,
भीडभाड तो दो पल की पर जुग-जुग ठेलम-ठेला ।
साधो ! दुनिया ॥

सब गाहक औ' सब व्यापारी,
सबके सिर पर गठरी भारी,
एक तराजू सब को तोले चेली हो या चेला।
साधो ! दुनिया ॥

जब तक खुला हुआ है बस्ता,
सबसे जोड प्यार का रिश्ता,
कुछ भी साथ न जाए रे जब हंसा उडा अकेला।
साधो ! दुनिया ॥

पतझर घर तक आ पहुँचा है

ओ ! उपवन के रसिक मधुकरो गुजन रण-भेरी मे बदला
अपना बाग-बहार लूटने पतभर घर तक आ पहुँचा है।

जिससे नेह लगाकर हमने
अपनो तक से आंख चुराई
पीछे से आगे लाने को
खुद जिसकी पालकी उठाई

हो जाए बदनाम न जग मे
कही हमारा साथी इससे
बार बार घायल होकर भी
हमने अपनी चोट छिपाई,

लेकिन वही पडोसी अपना आज भूलकर सारे रिश्ते,
प्रेमनगर को लाघ, हमारे घृणानगर तक आ पहुँचा है।
आ ! उपवन के ॥

जहाँ जली धूनी ऋषियो की
वहाँ धधकती आज चिताएँ,

सम्पूर्ण भारत की आत्मा एक है

सीमा पर लड़ते हुए जवानो !
तुमसे मेरा कोई रिश्ता नही,
जान पहचान नही,
तुम मेरे भाई या बन्धु नही,
पास या दूर के साथी नही,
नगर ग्रामवासी नही,
एक भाषा-भाषी नही,
लेकिन जब भी मैंने यह पढा या सुना,
(कि)
तुम अपनी बटिया-सी बेटी को,
चन्दा-सी पत्नी को,
अगले सहालग मे
पीले हाथ करके
ससुराल जानेवाली बहन को,
तुम्हारी कुशलता के लिए
हर दूसरे-तीसरे

और मैंने रोते-रोते
रात के एकात मे प्रभु से प्राथना की है
कि—वह मेरी कलम,
मेरे गीत,
और मेरी खुद की बाकी उम्र तुम्हें दे दे!
मगर ऐसा इसलिए नही हुआ है
कि मैं कवि हूँ,
भावुक हूँ,
सामान्य से अधिक सवेदनशील हूँ,
वरन् इसलिए कि
व्यक्ति, व्यक्ति होते हुए भी देश है,
और जाति, धर्म, भाषा की भिन्नता के बाद भी
सम्पूण भारत की आत्मा एक है।

सैनिकों का प्रयाण-गीत

माँ ने फिर हमें पुकारा,
जागा फिर देश हमारा,
खौली गंगा की धारा,
चीनी की चटनी बन जाय——जवानो बढ़ो, आगे बढ़ो।
जय हो हिन्दोस्तान की,
जय हर वीर जवान की।

हर आँधी है बहन हमारी, भाई हर तूफान है,
बाँहों में फौलाद जड़ा है, सीना ज्यों चट्टान है,
रोक सकें जो हमें, अभी तक बनी नहीं वे गोलियाँ,
झुक-झुक गए पहाड़ जिस तरफ बढ़ी हमारी टोलियाँ।
उट्ठो अपना बल तौलो,
तोपों के जबड़े खोलो,
ऐसा रे धावा बोलो–
चाऊ को माऊ याद आय——जवानो बढ़ो, आगे बढ़ो।
जय हो हिन्दोस्तान की,
जय हर वीर जवान की।

रक्षा हमको करनी है माँ बहनों के सिन्दूर की,
हर हिन्दू की रोटी की, हर मुस्लिम के तन्दूर की,
मंदिर अपना, मस्जिद अपनी, अपना हर गुरुद्वारा है
और हिमालय तो हमको प्राणों से ज्यादा प्यारा है।
सब कुछ अब वापस लेंगे,
दुश्मन का कफन बुनेंगे,
तिल भर निज भूमि न देंगे,
शिर हा भने यह चला जाय—जवानो बढ़ो, आगे बढ़ो।
जय हो हिन्दुस्तान की,
जय हर वीर जवान की।

मिट जाते जो मातृभूमि पर बनते वे इतिहास हैं,
मस्तक धूल चढ़ाने उनकी झुक जाते आकाश हैं,
धूप उढ़ाती कफन, चन्द्रमा बनता दिया मजार पर,
रक्त उन्हीं का रोगन बनकर चढ़ता हर दीवार पर।
मरने को जीना कर दो,
मखमल पश्मीना कर दो,
माँ का सब कर्जा भर दो,
बगिया खिलो न मुरझाय—जवानो बढ़ो आगे बढ़ो।
जय हो हिन्दोस्तान की,
जय हर वीर जवान की।

सौ-सौ चीनी को काफी बस अपना एक जवान है,
हर सैनिक राणा प्रताप है, 'थापा' हर चौहान है,
तेग शिवाजी की फिर से है मचल उठी हर म्यान मे,
चगेजो की कब्र बनेगी शायद हिन्दोस्तान मे।
बिजली को कवच बनाओ,
सूरज का मुकुट सजाओ,
ऐसी ज्वाला सुलगाओ,
दुश्मन की होली जल जाय--जवानो बढो, आगे बढो।
जय हो हिन्दोस्तान की,
जय हर वीर जवान की।

आजादी कायम रहती है मेहनत से औ' काम से,
और चली जाती है घर से वह गफलत आराम से,
खून पसीने मे बदल वह उसका पहरेदार है,
अधिक मुनाफा खाए जो वह काफिर है, गद्दार है।
गद्दारो को दफना दो,
जयचन्दी नस्ल मिटा दो,
घर घर रण-बिगुल बजा दो,
कोई न सोता रह जाय--जवानो बढो, आगे बढो।
जय हो हिन्दोस्तान की,
जय हर वीर जवान की।

इतना अपनाव था उन गध के शहजादो मे
कुद कुम्हलाता तो पाटल उदास होता था,
केतकी की जो कहो आंख जरा नम हाती
रातो उपवन मे हरसिंगार नही सोता था।

एक का दर्द था हर एक पडोसी का दर्द
और गुलशन की खुशी थी हरेक गुचे की खुशी,
ऐसे नाजुक से किसी तार मे वे सब थे गूथे
बिजलियाँ तक न चुरा पाईं वह हमजोल हँसी।

एक दिन एक हवा आई मगर पच्छिम की
जाने क्या कह गई हर डाल से चुपके-चुपके,
बिन किसी बात झगडने लगे सब पात-कुसुम,
क्यारी-क्यारी मे जहालत के अँगारे धधके,

लड उठा फूल से हर फूल औ' हर शाख से शाख,
कोपलो तक से अदावत की गध आने लगी,
ऐसे दिन-रात निकाले गए नफरत के जुलूस,
प्यार की लाश कफन तक को छटपटाने लगी।

पद्म कहता था कि दक्खिन का हूँ मैं रूपकँवल
मेरी उत्तर के गुलाबो से न बन पाएगी
और गर साथ हमे गूथा गया माला मे
सारी बगिया की हँसी धूल मे मिल जाएगी,

तिरछी कर आख तभी बोल उठी
मेरी चितवन का
मुझको बेल निक
दूर रखना।

कलगी कर ठीक तभी डाटके गेंदे ने कहा
कम किसी से नही पजाव का वेटा हूँ मैं
चपा यूपी का अरे सिर्फ है टसू का फूल
गुलमुहर की ही नरम छांव मे लेटा हूँ मैं

फिर तो जो मालती महाराष्ट्र की अब तक चुप थी
गधवेणी की गिरह मालती-सी यू बोली
पास आए न मेरे केतकी गुजरात की यह
वरना दीवाली यह बन जायगी पल मे होली।

गर्ज है यह कि वे सब फूल जो इस गुलशन के
सालहा-साल से रहते थे सग भाई से
आज इस बात पै लडते थे कि खुशबू उनकी
है अलग ऐसे अलग गीत ज्यो रुबाई से

उडते-उडते यह खबर पहुँच गई माली तक
हर किसी डाल से चुन-चुनके हर इक रग के फूल
उसने तैयार किया एक बडा गुलदस्ता
सतबरन चीर कि ज्यो पहन के आई हो धूल

अब न बेला ही रहा बेला, न चपा चपा
एक की पखुरी दूजे से सटी थी ऐसी
दायें हो देखो तो लगती थी जुही सिर्फ जुही
बायें हो देखो तो दिखती थी चमेली जैसी

भिन्न थे रग मगर आज सभी मिलकर वे
और ही एक नये रग को जनम देते थे
या कि फिर से न बिछुडने को कभी जीवन में
हाथ मे हाथ लिए दोस्त कसम लेते थे।

इतना अपनाव था उन गध के शहजादो मे
कुद कुम्हलाता तो पाटल उदास होता था,
केतकी की जो कही आँख जरा नम होती
रातो उपवन मे हरसिगार नही सोता था।

एक का दद था हर एक पडासी का दर्द
और गुलशन की खुशी थी हरेक गुचे की खुशी,
ऐसे नाजुक से किसी तार मे वे सब थे गूथे
बिजलियाँ तक न चुरा पाईं वह हमजोल हँसी।

एक दिन एक हवा आई मगर पच्छिम की
जाने क्या कह गई हर डाल से चुपके-चुपके,
बिन किसी बात झगडने लगे सब पात-कुसुम,
क्यारी-क्यारी मे जहालत के अँगारे धधके,

लड उठा फूल से हर फूल औ' हर शाख से शाख,
कोपलो तक से अदावत की गध आने लगी,
ऐसे दिन-रात निकाले गए नफरत के जुलूस,
प्यार की लाश कफन तक को छटपटाने लगी।

पद्म कहता था कि दक्खिन का हूँ मैं रूपकँवल
मेरी उत्तर के गुलाबो से न बन पाएगी
और गर साथ हमे गूथा गया माला मे
सारी बगिया की हँसी धूल मे मिल जाएगी,

तिरछी कर भौंह तभी बोल उठी जूही भी
मेरी चितवन मे है बगाल का जादू-टोना,
मुझको बेला यह बिहारी न तनिक भाता है
दूर रखना इसे डस जाय न मेरा सोना।

कलगी कर ठीक तभी डाटके गेंदे ने कहा
कम किसी से नही पजाब का बेटा हूँ मैं
चपा यूपी का अरे सिर्फ है टेसू का फूल
गुलमुहर की ही नरम छाँव मे लेटा हूँ मै

फिरता जो मालती महाराष्ट्र की अबतक चुप थी
गधवेणी की गिरह खोलती-सी यू बोली
पास आए न मेरे केतकी गुजरात की यह
वरना दीवाली यह बन जायगी पल मे होली।

गर्ज़ है यह कि वे सब फूल जो इस गुलशन के
सालहा-साल से रहते थे सगे भाई से
आज इस बात पै लडते थे कि खुशबू उनकी
है अलग ऐसे अलग गीत ज्यो रुबाई से

उडते-उडते यह खबर पहुँच गई माली तक
हर किसी डाल से चुन चुनके हर इक रग के फूल
उसने तैयार किया एक बडा गुलदस्ता
सतबरन चीर कि ज्यो पहन के आई हो धूल

अब न बेला ही रहा बेला, न चपा चपा
एक की पखुरी दूजे से सटी थी ऐसी
दायें हो देखो तो लगती थी जुही सिर्फ जुही
बायें हो देखो तो दिखती थी चमेली जैसी

भिन्न थे रग मगर आज सभी मिलकर वे
और ही एक नये रग को जनम देते थे
या कि फिर से न बिछुडने को कभी जीवन मे
हाथ मे हाथ लिए दोस्त कसम लेते थे।

हम भी गुलदान के यदि एक कुसुम वन जाएँ
गध इस प्रान्त की उस प्रान्त को सह सकती है
हम भी रह सकते है यह देश भी रह सकता है
भिन्नता मे भी सदा एकता रह सकती है।

गीत

धरती का जोबन जागे,
दुनिया से दुख सब भागे,
खुशियाँ हो आगे-आगे,
कुटिया महल बन जाय—हलो की फाल तेज़ करो।

जिसके हाथ कुदाली उसके हाथो मे तकदीर है
दुनिया सारी क्या है—केवल मेहनत की तस्वीर है
धरती ही है अन्नपूर्णा ओ' श्रम ही भगवान है
मदिर-मस्जिद तो मज़हब के पडो की दूकान है,
दूकानें यह सब टूटें,
मानव के बन्धन छूटें,
जी भर कर सब सुख लूटें,
कोई दुखी न रह पाय—हलो की फाल तेज़ करो।

तट-पनघट बसी बट सूने, सूनी हर चौपाल है
ऐसी घिरी उदासी जैसे खुशियो की हडताल है

पडे न भाँवर, होय न गौना, सजे न कोई पालकी
रूठी है किस्मत ज्यो रूठे लडकी सोलह साल की,
दुखडो की उमर घटा दो,
आँसू का ब्याह रचा दो,
मरघट को बाग बना दो,
फूलो की ऋतु फिर आय—हलो की फाल तेज करो।

राज बढा पसे का ऐसा बिके कफन तक लाशो का
हो नीलाम आख का पानी जैसे टिकट तमाशो का
कुत्ते जसे मरें, आदमी मरे गटर मे खानो मे
जुल्मो का यूँ जार सचाई बन्द हो गई थानो मे,
सारे ये ताश बदल दो,
धरती-आकाश बदल दो,
परा इतिहास बदल दो,
कोई कही न बच पाय—हलो की फाल तेज करो।

कोडे खाकर जिए पसीना पूजो के दरबार मे
दीपक को डाँटे अँधियारा देखो भरे बजार मे
पालिश करता हुआ बूट पर घूमे सडको पर बचपन
बेकारी इस कदर कि कल पटरी पर सोया चन्द्रबदन,
रम की बरसात बुलाओ,
प्यासो की प्यास बुझाओ,
भूखो की भूख मिटाओ,
अब न गरीबी सही जाय—हलो की फाल तेज करो।

बदले ज्यो तारीख रोज़ बदले चेहरे कानूनो के
गाधीजी बस बने रह गए हैडिंग कुछ मज़मूनो के
ऐसी घोर विषमता फैली, ऐसे घने तने जाले
इसपर नशा चढा दारू का, उसे जहर तक के लाले,
घरती को समतल कर दो,
आँसू गगा जल कर दो,
खाली हर आँचल भर दो,
फिर न अँधेरा कही छाय--हलो की फाल तेज़ करो।

जीने का हक बस दिल्ली को सकल देश को फाँसी है
ऐसा आया वक्त कि सूरज जुगनू का चपरासी है
कौए खाएँ दूध-मलाई, हस बसाएँ चिडियाघर
मालिक बने भिखारी डोलें, ठग बैठें सिहासन पर,
आधी को पत्र, पढाओ,
बिजली को कसम दिलाओ,
ऐसा तूफान उठाओ,
दिल्ली की निंदिया खुल जाय-हलो की फाल तेज़ करो।

बेशरम समय शरमा ही जाएगा

बूढे अम्बर से मांगो मत पानी
मत टेरो भिक्षुक को कहकर दानी
धरती की तपन न हुई अगर कम तो
सावन का मौसम आ ही जाएगा।

मिट्टी का तिल तिलकर जलना ही तो
उसका ककड से कचन होना है
जलना है नही अगर जीवन मे तो
जीवन मरीज का एक बिछौना है
अगारो को मनमानी करने दो
लपटो को हर शैतानी करने दो
समझौता कर न लिया गर पतझर से
आगन फूलो से छा ही जाएगा।
बूढे अम्बर से

वे हा मौसम को गीत बनाते जो
मिजराब पहनते हैं विपदाओ की
हर खुशी उन्ही को ि‍ल देती है जो
पी जाते हर नाखुशी हवाओ की

चिन्ता क्या जो टूटा हर सपना है
परवाह नहीं जो विश्व न अपना है
तुम जरा बाँसुरी मे स्वर फूंको तो
पपिहा दरवाज़े गा ही जाएगा।
बूढे अम्बर से

जो ऋतुओ की तकदीर बदलते हैं
वे कुछ-कुछ मिलते हैं वीरानो से
दिल तो उनके होते हैं शबनम के
सीने उनके बनते चट्टानो से
हर सुख को हरजाई बन जाने दो,
हर दुख को परछाई बन जाने दो,
यदि ओढ लिया तुमने खुद शीश कफन,
कातिल का दिल घबरा ही जाएगा।
बूढे अम्बर से

दुनिया क्या है, मौसम की खिडकी पर
सपनो की चमकीली सी चिलमन है,
परदा गिर जाए तो निशि ही निशि है
परदा उठ जाए तो दिन ही दिन है,
मन के कमरो के दरवाज़े खोलो
कुछ धूप और कुछ आँधी मे डोलो
शरमाए पाँव न यदि कुछ काँटो से
बेशरम समय शरमा ही जाएगा।
बूढे अम्बर से

मुक्तक

यह उचटी हुई नींद ये गीली पलकें,
जलती हुई हर सांस यह सूनी-सूनी,
बरखा मे किसी पेड के नीचे जैसे,
सुलगा के कोई छोड गया हो धूनी।

वो रूप वो छवि, और वह मुसकान अनाम,
देखे तो करे झुक के हर इक फूल सलाम,
बिखरे हुए कधो पे वो श्यामल कुतल,
उतरी हो कही जैसे हिमालय पे शाम।

, सपने हैं घिरौंदे कि बिखर जाते हैं,
मौसम हैं परिन्दे कि न बँध पाते हैं,
तू किसको बुलाता है खडा पानी मे,
गुजरे हुए दिन लौट के कब आते हैं।

दम - भर के लिए वक्त ठहर जाता है,
इतिहास का हर पृष्ठ सँवर जाता है,

जब प्यार जला देता है आँखो मे चिराग,
इन्सान मे भगवान नजर आता है।

हर स्वप्न है रो - रो के सुलाने के लिए,
हर याद है, घुल - घुल के भुलाने के लिए,
जाती हुई डोली को न आवाज लगा!
इस गाँव मे सब आए हैं जाने के लिए।

हर धार व तलवार बदल जाती है,
सरकार की सरकार बदल जाती है,
जब जाग के करवट है बदलती जनता,
इतिहास की रफ्तार बदल जाती है।

माथे पे घटाओ के पसीना आया,
फूलो को नये ढग से जीना आया
आँचल को जो खिसका के वो निकले घर से—
आँखो से हर इक रिंद को पीना आया।

हर रोशनी बुलबुल - सी चहक उठती है,
हर साँस शराबी - सी बहक उठती है,
जिस रात मे खिल जाते हैं दो प्यार के फूल—
सदियो की तवारीख महक उठती है।

रुख चलती हवाओं का बदल जाता है,
कन्दील-सा माहौल मे जल जाता है,
शरमा के झुका लेते है परबत आँखें–
पल्लू जो तेरे सिर से फिसल जाता है।

होठो से गजल - गीत सभी रूठ गए,
आँखो मे जो मोती थे कहीं टूट गए,
ओ काली घटा ऐसे यहाँ शोर न कर,
हम कारवाँ से दूर बहुत छूट गए।

नफरत का मेरे दर्द को अन्दाज न दे,
ये शोर - भरा जहर - भरा साज न दे,
हम थक के बहुत थक के जरा सोए हैं–
ओ दुनिया हमे इस तरह आवाज न दे।

उन गोरे कपोलो पे वह तिल की शोभा
भौंरा कोई सोया हो कँवल पर जैसे,
मेहदी से रची उफ् वह हथेली सुदर
अगार तिरा दे कोई जल पर जैसे।

जीवन ने कहा बहता हुआ जल हूँ मैं
तो आके मरण बोला मरुस्थल हूँ मैं,
पर आँख से जब प्यार के आँसू दो गिरे,
कण-कण ये लगा कहने कि बादल हूँ मैं।

• झुलसे हुए फूलों के अधर मुसकाए,
बन धूप गई छाव पथिक बिरमाए,
उसने जो गिरह खोल बिखेरे कुतल,
सब कहने लगे देखो वो बादल छाए।

ये गम ये जहर और है पीना कब तक,
आँखो मे यह आँसू का नगीना कब तक,
ऐ सहरे-उमर जल्दी से बन जा शब तू
या इतना बता दे कि है जीना कब तक।

हमने ही विठाया तुझे पैमाने पर,
फिर तुझको ही टेरा है नशा आने पर,
नफरत से न यूं देख हमें ऐ साकी!
कुछ हक है हमारा भी तो मयखाने पर।

तू जैसे जिलाएगा जिए जाएँगे,
जो काम कहेगा वो किए जाएँगे,
जब पीने ही आए हैं तेरे हाथों से—
तू जहर भी देगा तो पिए जाएँगे।

जिन्दगी कामयाब हो जाए,
प्रश्न हर एक जवाब हो जाए,
तुम जो आँचल मे बाँध लो अपने—
आसू-आँसू गुलाब हो जाए।

आदम का लहू

मायूस न हो ओ ! मेरे वतन,
यू डूब न ओ ! सूरज की किरन,
मिटकर भी नही मिट पाता है—आदम का लहू, आदम का लहू।

भरलो चाहे गोदामो मे,
बेचो चाहे बाजारो मे,
चढवादो चाहे सूली पर,
चुनदो चाहे दीवारो मे,
ज़ुल्मो से कहाँ घबराता है—आदम का लहू, आदम का लहू।

मिट जाती है हर नादिरशाही,
मुड जाते हैं रुख तलवारो के,
ढह जाते हैं गुम्बद महलो के,
झुक जाते हैं ताज पहाडों के,
जब भी अपनी पर आता है—आदम का लहू, आदम का लहू।

उससे ही है फूलो मे रगत,
उससे ही सुहागिन है धरती,
उसका ही खिलौना है सूरज,
उससे ही है रोशन हर बस्ती,
फिर भी रे ! बहाया जाता है—आदम का लहू, आदम का लहू ।

गाधी बनकर आया वह कभी,
जागा बनकर सुकरात कभी,
बोला बनकर मसूर कभी,
चीखा बनकर फरहाद कभी,
सौ भेस बदलकर आता है—आदम का लहू, आदम का लहू ।

वह मुसकाया तो बहार आई,
वह रोने लगा बरसात हुई,
वह अँगडाया तो दिन निकला,
वह अलसाया तो रात हुई,
सब आलम मे लहराता है—आदम का लहू, आदम का लहू ।

हिन्दू वो नही, मुस्लिम वो नही,
इन्सान रे ! बस इन्सान है वह,
नफरत जो करे शैतान है वह,
गर प्यार करे भगवान है वह,
कतरे मे समुन्दर लाता है—आदम का लहू, आदम का लहू ।

प्यार विना क्वाँरी हर वहुरिया

वल्कल न ओढ़ री गुजरिया,
अभी तो तेरी वारी उमरिया।

मेहदी की महक आय
अभी नरम हाथो से,
रातो की नीद खुले
सखियो की बातो से,
सपने देखे दिन मे सिजरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

परियो के जादू का
मत्र पढे अग-अग,
बोल बचन जसे कहो
दूर वजे जल - तरग,
झूम-झूम जाय घर-डगरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

अनियारे नैना बिन
काजर ही कारे दिखें,
कँगना जो दमकें तो
भोर में सितारे दिखें,
बचपना न छोड़े ढीठ चुरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

नव रस नव रग घुरे
पियर-पियर चोली मे,
बदलियाँ ठिठोली करें
अलकों की टोली मे,
होठों पँ चमके बिजुरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

मुरक-मुरक दरपन यूँ
मुसकाए चितवन से,
उत्तर को चले किन्तु
लौटे मन दक्खिन से,
बसी बनी खुद ही जल-मछरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

चीवर वह पहने जो
हो न पिया की प्यारी,
मले वह भभूत जिसे
सौत बने बीमारी,
तू तो मेरे होठ की बँसुरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

प्रीति की हवेली मे
खिडकी है अनबन की,
यह न खुले तो न मिले
गध मदिर मधुबन की,
खिडकी पै लगा नहो किवरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

रेशम से ब्याहे या
वल्कल से प्यार करे,
धूल को लपेटे या
फूल से सिंगार करे,
प्यार बिना क्वांरी हर बहुरिया।
अभी तो तेरी बारी उमरिया।

गीत

सेज पर साधें बिछालो,
आँख मे सपने सजालो,
प्यार का मौसम शुभे ! हर रोज़ तो आता नही है।

यह हवा, यह रात, यह
एकात, यह रिमझिम घटाएँ,
यूँ बरसती हैं कि पडित-
मौलवी पथ भूल जाएँ,
बिजलियो से माँग भर लो,
बादलो से सधि कर लो,
उम्र-भर आकाश मे पानी ठहर पाता नही है।
प्यार का मौसम

दूध सी साडी पहन तुम
सामने ऐसी खडी हो,
जिल्द मे साकेत की
कामायनी जैसे मढी हो,

लाज का वल्कल उतारो,
प्यार का कगन उजारो,
'कनुप्रिया' पढत न वह 'गीताजलि' गाता नही है।
प्यार का मौसम

हो गए सौ दिन हवन तब
रात यह आई मिलन की,
उम्र कर डाली धुआँ जब
तब उठी डोली जलन की,
मत लजाओ पास आओ,
खुशबुओ मे डूब जाओ,
कौन है चढती उमर जो केश गुंथवाता नही है।
प्यार का मौसम

है अमर वह क्षण कि जिस क्षण
ध्यान सब तजकर भुवन का,
मन सुने सवाद तन का,
तन करे अनुवाद मन का,
चाँदनी का फाग खेलो,
गोद मे सब आग ले लो,
रोज ही मेहमान घर का द्वार खटकाता नही है।
- प्यार का मौसम

वक्त तो उस चोर नौकर की
तरह से है सयाना,
जो मचाता शोर खुद ही
लूटकर घर का खजाना,
वक्त पर पहरा बिठाओ,
रात जागो औ' जगाओ,
प्यार सो जाता जहाँ भगवान सो जाता वही है।

प्यार का मौसम

ऐसी रात नहीं आती है

फुलवा मले गुलाल दुआरे,
भँवरा रस पिचकारी मारे,
बार-बार तो रसिकप्रिया ओ! ऐसी रात नहीं आती है।

रोज न होते स्वप्न विवाहित,
रोज न करती प्यास प्रतीक्षा,
रोज न भिक्षुक बनकर तन से
आत्मा लेती है गुरु-दीक्षा,
मत अपने से आँख चुराओ,
मत आँचल मे गाठ लगाओ,
बडी कठिनता से निर्धन की प्रीति सयानी हो पाती है।
बार-बार तो रसिकप्रिया ओ!

सारी उमर बन गई धूनी,
तब आई यह घडी प्यार की,
सारे दिन बीने काँटे जब
छाह मिली तब हरसिंगार की,

और प्रतीक्षा अब न कराओ,
और अँगारों में न सुलाओ,
जितना कुछ सह लिया उसी की सुध कर आँख भरी आती है।
बार-बार तो रसिकप्रिया ओ!

ना ना उधर न शीश घुमाओ,
चुम्बन तो है मुकुट प्यार का,
जब तक वह न सजे माथे पर,
है सिंगार सारा उधार का,
भौंह न तानो, रार न ठानो,
मेरी नहीं हृदय की मानो,
कभी-कभी होठों से पहले मन की बात सुनी जाती है।
बार-बार तो रसिकप्रिया ओ!

ऋतु तो आवारा लड़की है
जाने कब किसकी हो जाए,
जाने किस घर दिवस गुज़ारे,
जाने किस घर रात बिताए,
मत विश्वास करो मौसम पर
फागुन की कमउम्र कसम पर,
हर दिन प्यार नहीं होता है, हर दिन आग नहीं आती है।
बार-बार तो रसिकप्रिया ओ!

हमारो रँग केसरिया

दुनिया को रग दुरग। हमारो रँग केसरिया।।

कोई रँगाए चूनर धानी,
काहू की चोली पै चाँदी को पानी,
ऐसे रग रँगे पर हम तो रँग गई सारी उमरिया।
हमारो रँग केसरिया।।

कोई पिया की दिन की सहेली,
महके किसी की रात हथेली,
हर दम साथ रहे पर हम ज्यो बादल के साथ बिजुरिया।
हमारो रँग केसरिया।।

कोई सजन की अँगुरी की मुँदरी,
कोई बलम की आँखो की पुतरी,
बिन माँगे अधरारस चाखें हम अपने श्याम की बँसुरिया।
हमारो रँग केसरिया।।

कोई मथुरा-काशी जाए,
कोई मसान मे धूनी रमाए,
सारे रस्ते छोड चले हम अपने पी की नगरिया !
हमारो रँग केसरिया !!

[ठुमुक पर गाया जानेवाला